Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
July- December 2023 4(2), 1154–1158

मुगलकालीन भारत में कृषि भूमि के महत्व का एक अध्ययन

Ritesh Kumar Singh [1], Shagufta Parveen [2]

[1] Research Scholar, Department of History, Mangalayatan University
[2] Research Director, Department of History, Mangalayatan University

ABSTRACT

मुगलकील भारत का भौगोलिक मानचित्र को देखने से पता चलता है कि कहीं जगल था तो कहीं पथरीले पठार और कहीं रेगिस्तान। पश्चिमी बंगाल में सुंदरवन तक खेती होती थी तो चटगांव से सिलहट तक घने जंगल थे। बिहार और अवध गें बड़े पैमाने पर खेती होती थी। इस क्षेत्र में भी गोरखपुर से लेकर आजमगढ़ तक का क्षेत्र जंगलों से ढंका हुआ था। आगरा प्रांत में सारी की साशी भूमि पर खेती होती थी। मालवा की भूमि बड़ी ही उर्वर थी। बरार के जंगलो को काटकर वहाँ की भूमि को कृषि योग्य बनाया गया। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मुगल साम्राज्य में समस्त कृषि योग्य भूमि पर खेती होती थी और आज की अपेक्षा उस समय की भूमि बडी ही उपजाऊ थी। भूमि पर आमतौर पर दो प्रकार की फसले बोई जाती थी रबी और खरीफ, लेकिन कुछ क्षेत्रों में तीन फसलों का उल्लेख मिलता है। अनुभव के आधार पर भारत के किसानों को फसलों की अदल बदल कर खेती करने का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त था और वह इससे अधिक लाभ उठाता था। मुगल काल मे कृषि उत्पादन पर विशेष ध्यान दिया जाता था। उन्होंने नगरों की प्रवृत्तियों के लिए गांवों को समृद्धशाली बनाना आवश्यक समझा। उन्होंने किसानों को अधिक उपज के लिए प्रोत्साहित किया। मुगल काल की यह विशेषता रही कि कृषि क्षेत्र में अधिक उत्पादन को औधोगिक समृद्धि का आधार बनाया गया। मुगलों के पहले दिल्ली के सुल्तानों में बलबन, गयासुद्दीन तुगलक और मुहम्मद तुगलक ने भी ऐसा करने का प्रयास किया, परन्तु उसमें उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली।

Keywords: कृषि उत्पादन, किसान, ज्वार, बाजरा, चना, सांवा, कोदो आदि।

DOI
10.29121/shodhkosh.v4.i2.2023.2248

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2023 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

OPEN ACCESS

1. प्रस्तावना

मुगलकालीन लेखकों के अनुसार मुगल सम्राटों ने साम्राज्य के हित में बहुमूल्य फसलों की उपज के लिए किसानों को प्रोत्साहित किया। मुगल प्रशासन यह नहीं चाहता था कि अत्यधिक खाद्य उत्पादन से मूल्यो में गिरावट आ जाये और किसानों को उनके श्रम का वास्तविक लाभ न मिले। इससे पता चलता है कि मुगल शासकों का वास्तविक उद्देश्य आर्थिक संतुलन बनाये रखने की थी। इसी उद्देश्य से कुछ वर्ग के किसानों को खाद्यान्न के बजाय बहुमूल्य फसलों की खेती करने के लिए कहा गया जिससे नगर के कारखानों को कपास और अन्य कच्चा माल आसानी से उपलब्ध हो सके इस काल में एक ओर तो अनाज के उत्पादन में वृद्धि हुई तथा दूरारी ओर व्यवसायिक फसलों के उत्पादन का विस्तार भी अधिक हुआ। इस काल के मुख्य खाद्यान्न थे गेहूँ, जौ, चावल और चना। हल और बैल, ज्वार, बाजरा जैसे मोटे अनाज तथा चावल, दाल, तिलहन और गाँव की सम्पूर्ण पुरानी परम्परा भारतीय इतिहास कृषि को मुगल काल और भारतीय जनता को उससे भी पुराने इतिहास से जोड़ती है।

भिन्न भिन्न प्रकार के अनाजों के लिए भिन्न भिन्न प्रकार की भूमि एवं जलवायु की आवश्यकता होती थी। अतः आज के समान ही मुगल काल में भी अनाजों के उत्पादन के क्षेत्र विशेष थे। चावल असम की घाटी, बंगाल, उड़ीसा, तामिल प्रदेश, पश्चिमी समुद्र

तट, सिंध, पंजाब और काश्मीर में पैदा होता था। गेहूं बिहार, अवध और इलाहाबाद के प्रांतों में पैदा होता था। गुजरात में उत्तम किस्म के चावल की पैदावार होती थी। सर थामस रो के अनुसार देश की गेहूँ और चावल की जरूरत बंगाल से पूरी होती थी। 16वीं शताब्दी में उत्तरी भारत गेहूँ के लिए प्रसिद्ध था। इसके अतिरिक्त उत्तर भारत मोटे अनाज यथा ज्वार, बाजरा, चना, सांवा, कोदो, काकुन, महुवा, कुदीरी या कूरी, तथा दाले यथा चना, मसूंर, मटर, मूँग, उडद, मोरू, लोबिया, कुल्थी और अरहर पैदा करता था। जबकि दक्क्खन ज्वार और कपास पर ही निर्मर था। इस काल में बाजरे को लहदरा तथा काकुल को काकुल या गाल कहकर पुकारते थे। उत्तर पश्चिम क्षेत्र जहाँ पानी की सुविधा थी, वहाँ पर चावल की खेती हिन्द नदी के पानी से की जाती थी। लाहौर में भी उच्च कोटि के चावल की पैदावार होती थी। जौ और गेहूँ गुजरात और भारत के मध्यवर्ती भाग में पैदा होता था। ऐसे संदर्भ मिलते हैं कि बंगाल में निम्न कोटि के गेहूँ की पैदावार होती थी लेकिन जौ की खेती नहीं होती थी। इलाहाबाद में ज्वार और बाजरा की पैदावार नहीं होती थी लेकिन दीपालपुर में ज्वार की खेती होती थी। इनकी पैदावार गेहूँ के क्षेत्र मे तो होती थी इसके अतिरिक्त गुजरात, खानदेश और अजमेर के प्रांतों में अधिक पैदावार होती थी। अरहर, मूंग, उडद, मंसूर, मोठ की दालों की उपज के वही क्षेत्र थे जो आज है। दूसरी फसल मक्का की थी। बहुत दिनों तक यह धारणा थी कि मक्का की खेती 17वीं शताब्दी के शुरू में हुई थी। किन्तु पी० के० गोडे ने इसका अस्तित्व 17वीं शताब्दी में महाराष्ट्र में स्थापित किया है और अपने प्रचलित नाम मक्का की तहत उसका जिक्र उन फसलों के संदर्भ में मिलता है जिनका हवाला पूर्वी राजस्थान के उस राजस्व आंकलन में दिया गया है जो पूर्वी राजस्थान के संदर्भ में 1644 ई० में किया गया था। इसके अत्तिरिक्त इरा काल में उगाई जाने वाली अन्य फसलें थी मोटे पतले गन्ने, छोटे और बडे प्रकार के कपास, भांग, तिलहन, नील, पोस्ता, पान और सिघाडा। इस समय आल नाक एक झाड़ीदार पौधा उगाया जाता था जिससे रग निकाला जाता था। ईख और कपास की फसलों को नकदी फसल जिन्हें 'जिन्स–ए–कामिल' या 'जिन्स–ए–आला' कहते थे। इसका अर्थ था कि इनको तुरन्त बेच दिया जाता था। इनको श्रेष्ठ इसलिये माना जाता था। क्योंकि इनकी क्रय विक्रय की दर ऊँची होती थी। कपास की खेती सारे उत्तर भारत में होती थी। मैनरीक ने अपनी आँखो से लाहौर, मुल्तान और थट्टा में कपारा की खेती देखी। साल बैक ने बयाना और मेड़ता मे कपास की खेती देखी। सर थामसरो ने अजमेर और माण्डू में कपास की खेती का वर्णन किया है।कपास की खेती मालवा, आगरा पटना आदि कई जगहों पर की जाती थी। सम्भवत. बंगाल में अच्छी किस्म का कपास पैदा होता था क्योंकि ढाका का मलमल सारे संसार मे प्रसिद्ध था। मुगल काल में कपास की खेती की अपेक्षा गन्ने की खेती अधिक बडे पैमाने पर होती थी। उड़ीसा सहित बंगाल सूबे में गन्ना मुख्य रूप से उगाया जाता था। यह एक कीमती फसल थी। गन्ने की खेती बिहार में होती थी। बयाना, कालपी, महुअन हिसार फीरोजा और दिल्ली गन्ने की खेती के लिए प्रसिद्ध थे। आगरा, दिल्ली, लाहौर, मुल्तान, मालवा, सिन्ध और गुजरात आदि में गन्ने की खेती होती थी। असम में लाल, सफेद और काले दाने की चीनी का उत्पादन होता था जो लोगों को काफी पसन्द था। बंगाल की चीनी काफी प्रसिद्ध थी। तिल और रेडी जैसे तिलहनों के उत्पादन के क्षेत्र वहीं थे जो आज है। जूट की खेती बंगाल प्रांत में होती थी। सोलहवीं शताब्दी में मुख्यतः निर्यात के लिए नील बोया जाता था। नील की खेती सर्वव्यापी थी। फलतः यह एक अत्यन्त मंहगी फसल थी। यह ज्यादातर आगरा के निकट बयाना और गुजरात स्थित सरखेज में पैदा की जाती थी। बयाना का नील उत्तम किस्म का माना जाता था। बयाना के नील को अंग्रेज व्यापारी बड़े पैमाने पर खरीदकर अपने देश के बाजारों में बेचते थे। सरखेज और सेहवान में भी नील की खेती होती थी। निम्न किस्म के नील की खेती खुर्जा और कोल (अलीगढ़) में की जाती थी। सर जदुनाथ सरकार ने लिखा है कि बयाना का नील सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। नील का प्रयोग कपडे को रंगने में किया जाता था। इरफान हबीब के अनुसार नील का वार्षिक उत्पादन मुगल साम्राज्य में बयाना, दोआब, सरखेज, मेवात, सेहवान में 18 लाख पौण्ड था। अकबर के काल में पोस्ता गन्ने के समान ही मूल्यवान उपज थी। पोस्ता तथा पिन औषधि के लिए उगाया जाता था। पोरता से अफीम निकाली जाती थी। मालवा और बिहार की अफीम उत्तम किस्म की मानी जाती थी। बंगाल, मुल्तान, सेहवान, मारवाड़, मेवाड़, गुजरात और बरार में भी अफीम की खेती होती थी। भारतीय कृषि का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि उसमें नई नई फसलों को सहज रूप से स्वीकार करने की क्षमता है। 17 वीं सदी में उसने यह क्षमता अभूतपूर्व रूप से प्रदर्शित की। नई दुनिया से प्राप्त तम्बाकू की खेती में बड़ी तेजी से विस्तार हुआ। 16वीं सदी के शीघ्र बाद यह खेती पश्चिम घाट पर शुरू हुई और 1650 ई० के आसपास यह मुगल साम्राज्य के हर कोने में शुरू की गई। भारत में तम्बाकू का प्रवेश अकबर के समय के अंतिम चरण में हुआ था। सम्मवतः यह पुर्तगालियों के द्वारा लाया गया। यही कारण है कि अबुल फजल ने तग्बाकू की खेती के विषय में नहीं लिखा है परन्तु ऐसा अनुमान किया जाता है कि आईन–ए–अकबरी के लिखने के दस वर्ष के बाद इसकी खेती विस्तृत रूप से की जाती थी। जहांगीर ने तम्बाकू की खेती पर प्रतिबंध लगाया क्योंकि लोग इसके आदी हो गये थे, परन्तु इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। औरगजेब ने भी तम्बाकू की खेती को रोकने का प्रयास किया परन्तु उसकी आज्ञा का उल्लंघन ही होता रहा। किसान तम्बाकू की खेती को अधिक लाभप्रद समझते थे, इसलिए इसकी खेती बहुतायत से की जाती थी। सत्रहंवीं शताब्दी में तम्बाकू की खेती का रूप व्यापक हो गया। असद बेग ने अपने वाक्यात में लिखा है कि दक्षिण के एक राजदूत ने सम्राट अकबर को एक हुक्का और चिलम भेंट की। शाहजहां के शासन काल में अभिजात वर्ग के लोग तम्बाकू का सेवन करते थे। 1643 ई० में सूरत में उत्तम किस्म के तम्बाकू की खेती की जाने लगी। एडवर्ड टेरी जब भारत में आया तब उसने तम्बाकू की खेती बड़े पैमाने पर देखे।

मुगलकाल से पूर्व रईस और राजा बड़े सामंत माने जाते थे। उनके पास विषेशाधिकार होते थे। सामंतवर्ग में राईस और राजा के नीचे के स्तर पर चौधरी, सूत और मुकद्दम होते थे। चौधरी एक सौ गांवों के समूह का हिन्दू–प्रधन होता था। मुकद्दम गांव का मुखिया होता था। सामंत वर्ग के एक दूसरे स्तर के लोगों के पास काफी मात्राा में निजी जमीन होती थी। सामान्यत वह भूमि कर मुक्त होती थी सुल्तान और उसके अध्किारियों की ओर से ये सामंत किसानों से भूमि कर वसूलते थे।प्रत्येक गांव का बड़ा किसान जमींदार खुद कहलाता था जो गांव का मालिक होता था। वह अपनी भूमि पर लगान नहीं देता था और इसके बदले अत्यन्त कमजोर लोगों पर करों का बोझ लाद देता था। वैसे लोग 'बलहर' कहलाते थे जो निम्नतम अछूत जाति के होते थे। ग्राम समुदाय की तरपफ से इनको केवल बसने के लिए जमीन दी जाती थी। इससे अधिक इनके पास और कुछ नहीं रहता था। इससे स्पष्ट है कि निम्न स्तर के लोगों पर सामंती शोषण का शिकंजा काफी मजबूत था। एक ओर अपार भूमि के मालिक और दूसरी ओर बिल्कुल भूमिहीन, फिर भी करों के बोझ से दबे हुए जिनके पास भूमि के अतिरिक्त और थोड़ी सी भी भूमि न हो, उनसे लगान वसूल किया जाना, यह कितनी विडम्बना है। यह तो भूमिहीनों की स्थिति थी।

मुगलकाल में भी राजा अपने राज्य का सर्वोच्च अधिकारी था। उसके साथ ही उसके अधिनस्थ सामंत भी स्वयं को राजा के प्रतिनिधि के रूप में एक हस्ती मानते थे। इस्लामी राज्य में अमीरों का प्रभाव दरबार में काफी बढ़ गया था जिससे वे राज्य व्यवसथा में परिवर्तन तथा उत्तराधिकारियों के निर्धरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लग जाते थे यह प्राचीन सामंतों जैसे ही होते थे। इसीलिए अलाउद्दीन खिलजी और बलबन को अमीरों की शक्ति प्रतिबंधित करनी पड़ी। सामंतवर्ग के समूह में राजा, माल्लिक, अमीर, सिपहसालार, राजपूत, राजा धनी व्यवसायी वर्ग तथा अन्य अधिकारीगण के साथ–साथ एक और महत्वपूर्ण वर्ग धार्मिक मुल्लाओं का था। अकबर जहांगीर और अशंतः शाहजहां को छोड़कर मध्ययुगीन भारत एक इस्लामी राज्य था। मुसलमानों के शासन के अधीन राजतंत्र धर्मतंत्र के रूप में था। इसका कारण यह था कि धर्म तांत्रिक राज्य की विशेषताओं की प्रभुसत्ता ईश्वर के आदेशों के अनुसार उसके फरोहितों द्वारा राजकार्य दैनिक नियमों के अनुरूप चलाना मध्ययुगीन दिल्ली सल्तनत व मुस्लिम राज्य में विद्यमान था। दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों ने अपने को ईश्वर के प्रतिनिधि खलीफा का सहायक या मातहत माना था। शेरशाह (1540–1545) ने मुगल सम्राट के खलीफा की उपाधि ग्रहण की, जबकि अकबर से लेकर औरंगजेब तक ने 'ईश्वर' की छाया' ईश्वर के 'खलीफा' धरती पर ईश्वर के दूत की उपाधि ग्रहण की।' अबुल फजल के अनुसार आधुनिक रंगपुर जिले मे एक प्रकार का टाट तैयार किया जाता था जिससे कपड़ा बनाया जाता था। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सम्भवतः अकबर के काल में पटसन पैदा किया जाता था। बाबरनामा के अनुसार यद्यपि 16वीं शताब्दी में आम, केला, इमली, महुवे, खिरनी, जामुन, कमरख, कटहल, बडहल, बेर, करौंदा, गूलर, आमला, चिंरौजी, खुरमे, नारियल, ताड़, नारंगी इत्यादि का उत्पादन होता था। बाबर ने बल्ख के खरबूजा बोने वाले को बुलवाकर आगरा में खरबूजा लगवाए और साथ में अंगूर की उत्तम बेलों को भी लगाने का आदेश दिया। सर्वप्रथम 16वीं शताब्दी में ही भारत में पुर्तगालियों द्वारा अनान्नास, पपीते, काजू के पेड़ लगवाये गये। इस प्रकार मुगल काल में भारतीय कृषि अवश्य ही समृद्ध हो गयी।

भारत का अधिकांश भाग समतल भूमि पर स्थित है। यद्यपि भारत में इतने अधिक नगर तथा विलायते प्रदेश हैं किन्तु किसी भी स्थान पर जलधाराएं नहीं है। नदियों तथा कहीं कहीं पर स्थित जलाशय यहाँ की जल धाराएं है। कुछ नगरों में जहाँ नहरे खोदकर जल लाना संभव है वहाँ भी नहीं लाया जाता। इसके अनेक कारण है। उनमें से एक कारण यह भी है कि यहाँ कि कुषि तथा उद्योगों को जल की आवश्यकता नहीं होती। खरीफ की फसल वर्षा के जल से हो जाती है। पौधों को एक दो वर्ष तक डोल अथवा रहट से सींच दिया जाता था। तत्पश्चात् उन्हें सींचने की कोई आवश्यकता नहीं होती थी। कुछ सब्जियो को निरतर सिंचाई की आवश्यकता रहती थी। यद्यपि कृषि उत्पादन को बढाने के लिए कोई विशेष तकनीकी सुधार नहीं किए गये तथापि सिंचाई व्यवस्था में कुछ सुधार अवश्य किए गये। मुगल काल में सिचाई की सुविधा प्रदान करने के लिए कच्चे, पक्के कुए, तालाब और नहरे खुदवाई गई। सर्व प्रथम 1526 ई० में बाबर ने उत्तर भारत में सिंचाई की समुचित साधन न होने के विषय में लिखा है। उसके अनुसार नहरें और अन्य पानी की पूर्ति के लिए कृत्रिम साधनों की कमी पाई गई जिसके कारण उनके मकानों और बगीचों में पानी पहुँचना दुष्कर कार्य था। बहुत से नगरों और कृषि योग्य भूमि में पानी की पूर्ति नहीं होती थी। कई स्थानों पर नहरों से पानी लाया जा सकता था परन्तु ऐसा नहीं किया गया।

मुगल आर्थिक व्यवस्था का आधुनिक अध्ययन सामान्यतः लंबे दौर के कार्य कलापों के साथ सरोकार रखता है। कोई भी यह पूछना चाहेगा कि कया ऐसे तत्त्व थे, जो उत्पादन और व्यापार के विस्तार को रोक रहे थे दूसरी तरफ, क्या 'पूँजीवादी विकास' की संभावनाएँ थीं या कृषि क्षेत्र अत्यधिक कर–संग्रह के कारण आक्रांत था और, क्या संपूर्ण दौर में यहाँ मुल्य क्रांति Price-Revolution हुई अथवा नहीं ऐसा प्रतीत होता है कि इन बहसों में अल्प अवधि के उत्पादन और उपभोग के उतार–चढ़ाव के दौर की अवहेलना की गई है, जिसने व्यक्तिशः या संपूर्णतः सही अर्थों में अर्थव्यवस्था के कार्यकलापों को अत्यधिक प्रभावित किया होगा। वस्तुतः व्यापारिक चक्रों के पँजीवादी विकास के रास्ते पर प्रभावों के साथ यहाँ एक साम्यता है, जो कि स्वयं अल्प अवधि की परिघटनाएँ हैं।यह सर्वमान्य है कि साधारणतः अकालों और प्राकृतिक विपत्तियों का मुगलकालीन भारतीय अर्थव्यवस्था पर अत्यधिक बुरा प्रभाव पड़ा था। बाजार और नकद–धुरी Cash-nexus के विकास के साथ अत्यधिक फसल और परिणामस्वरूप

गिरती हुई कीमतें 'विपत्ति' के समान उभरती नजर आती थीं। दूसरे शब्दों में, न केवल जलवायु बल्कि मौद्रिक परिघटनाओं ने भी आर्थिक अव्यवस्था पैदा करने में अपनी सह देनी शुरू कर दी थी। तथापि अकालों की गणना के अतिरिक्त, 17वीं शताब्दी के किसी भी भयंकर अभाव और मंदी के विवेचन का अभी तक कोई प्रयास नहीं किया गया है। यह सही है कि साक्ष्य सामान्यतः इस तरह के नहीं हैं और न ही बड़ी तादाद में उपलब्ध हैं, जैसा कि सामान्यतः कोई चाहता है लेकिन फिर भी कुछ साक्ष्य ऐसे हैं, जिनकी ओर ध्यान आकर्षित होना अत्यावश्यक है। इसके साथ ही यह भी दर्शाया जा सकता है कि यह इससे भी अधिक कुछ थी और इसका कृषीय Agrarian और मुगलकालीन भारत के सामान्य इतिहास में भी संभवतः एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। शहजादा मुराद बख्श के दरबारी कवि बिहश्ती शिराज़ी ने सर्वव्यापी अकाल, प्लेग, बर्बाद शहरों और वाणिज्य एवं व्यापार के उजाड़ का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है, जो 1658 ई० की गर्मियों में शाहजादा के पतन के पश्चात उभरकर सामने आया। स्वयं सम्राट औरंगजेब के दरबारी इतिहासकार, आलमगीरनामा के लेखक मुहम्मद काज़िम के अनुसार, जो अभाव Searcities अब शुरू हुए, वे 1658–62 तक जारी रहे। इसके कारण कंगाल किसानों रियाया मेहनतज़दा का गाँवों से शहरों की ओर पलायन हुआ। परिस्थितियाँ इतनी गंभीर हो गई थीं कि बादशाह को मजबूर होकर दस मुफ्त रसोवड़े लंगर राजधानी दिल्ली में, बारह आसपास के परगनों में एवं साथ ही साथ आगरा और लाहौर में खोलने के आदेश देने पड़े। इन बादशाही लंगरों के अतिरिक्त, एक हजार रैंक तक के उन सभी मन्सबदारों को अपने स्वयं के मुफ्त रसोवड़े चलाने के लिए कहा गया। शहरों में रह रहे लोग अनाज खरीदने के लिए गाँवों की ओर गए, क्योंकि वे शहरों में व्याप्त ऊँची कीमतें देने में असमर्थ थे। 'ताकतवरों' ने 'कमजोर' का शोषण किया और सरकारी अधिकारियों को व्यवस्था कायम करने के लिए, वहाँ तैनात फिया गया। दिल्ली में अनाज की सप्लाई पर दबाव कम करने के लिए मन्सबदारों को अपने आधे सैनिकों को, अपनी अपनी जागीर में भेजने के लिए कहा गया। मुहम्मद काज़िम मे इस अभाव की वजह 'उत्तराधिकार–युद्ध' के कारण 'प्रशासन की टूटन' को बताया है एवं बरसात की कमी को अतिरिक्त कारण के रुप में दर्शाया है। विशिष्ट क्षेत्रों से प्राप्त सुचनाओं से इन सामान्य वक्तव्यों की पुष्टि होती है। इंगलिश रिकाड्स यह बताते हैं कि 1659 में गुजरात में भयंकर अभाव से बरी तरह पीड़ित रहा जो कि 1663–64 तक जारी रहा। अनाज यहाँ तक कि नील की कीमतें भी इतनी अधिक बढ़ गई थीं फि उन्होंने 1630–32 की कीमतों के स्तर को छू लिया था। यह बर्ष गुजरात अकाल के थे। 1663–64 के अभाव एवं ऊँची कीमतों की बजह से जनसंख्या घटने की आशंकाएँ पैदा हो गईं। समय पर हुई 1664 की बरसात ने इस रुख को बदल दिया। इस तरह गुजरात के अकाल के लिए मोटे तौर पर मानसून के न आने को उत्तरदायी ठहराया गया था। 1658–60 के दौरान सिंध से अकाल, प्लेग और ऊँची कीमतों की खबर मिल रही थी। एवं 1658–59 में अपनी सेना के साथ शहज़ादा दारा शिकोह के आगमन की वजह से तकलीफ और अधिक बढ़ गई थी। मालवा को दुर्भिक्ष–बर्ष का मुँह देखना पड़ा, क्योंकि 'उत्तराधिकार युद्ध' की वजह से ख़रीफ की फ़सल नष्ट हो गई थी। राजस्थान को 1660–63 और 1665 में सूखे और अकाल का सामना करना पड़ा। 1665 का अकाल विशेष रूप से भयंकर और सर्वव्यापी था और किसान मालवा और मथुरा की ओर पलायन कर गए। पूर्वी क्षेत्र में 1662–63 में ढाका में अकाल का प्रादुर्भाव हुआ। यह आरोप लगाया गया कि राहदारी की जबरदस्ती वसूली और परिवहन में सरकारी दखलंदाजी से विशेष प्रकार की भयंकरता बढ़ गई।

17वीं शताब्दी के पाँचवें और छठे दशक के प्रारंभ में लगातार अभाव (या अभावों के सिलसिले) का यह साक्ष्य, 1660 के दशक में सम्राट द्वारा जारी दो सुविख्यात फरमानों से और सुदृढ़ हो जाता है। रसिकदास को 1665–66 में और मुहम्मद हाशिम को 1669–70 में एक एक फरमान जारी किया गया था। संपूर्ण साम्राज्य के कृषीय प्रशासन (agrarian administration) के सामान्य प्रयोजन के दो फरमानों का जारी किया जाना, स्वयं में इस चिंता का द्योतक है जो कि परिस्थितिवश सम्राट को हो रही थी। लेकिन फरमान इस मसले पर बिलकल ही स्पष्ट हैं। दोनों फ़रमान खेती में गिरावट एवं किसानों के द्वारा जमीन त्याग के प्रति चिंता व्यक्त करते हैं। उनके प्रावधानों का उद्देश्य इस प्रक्रिया को रोकने का था। यह टोडरमल के मेमोरेंडम 1582–83 और साथ ही साथ फ़तउल्लाह शिराज़ी की सिफारिशों 1585 की विषय वस्तु के बिलकल विपरीत हैं, जो कि अकबर की स्वीकृति द्वारा सामान्य आदेश बन गए थे। औरंगज़ेब के इन दो फ़रमानों में, राजस्व में सामान्य गिरावट या खेती में पतन का कोई अन्य उल्लेख नहीं है। अकबर के दोनों दस्तावेज़ों में अत्यावश्यकता और व्यग्रता की कमी है, जो कि सम्राट औरंगजेब के दोनों फरमानों में मुखर है। यहाँ तक कि टोडरमल खालिसा भूमि में सूचित आराज़ी में पतन को दिखाते हैं, तब वह वास्तविक खेती में गिरावट नहीं मानते बल्कि या तो इसे किसानों की छपाने को प्रवृत्ति या फिर राजस्व अधिकारियों के भ्रष्टाचार एवं अक्षमता की बजह से, कागज पर घटौती मानते हैं। वे, जो उपाय सुझाते हैं, वह एक सख्त कदम है, उदाहरणार्थ, पूर्व मापित क्षेत्र को निश्चित मान लिया जाए और सामान्य रूप से बिना माप के नसक के द्वारा धारा 3 इसे और अधिक बढ़ा दिया जाए। वह यह अनुमान लगा लेते हैं कि इस तरह बढ़ाकर लागू की गई राजस्व माँग, किसान को अधिक भूमि जोतने के लिए विवश करेगी।

2. निष्कर्ष

मेरे इस शोध पत्र के आधार पर मुगलकालीन समय में कृषि दिए गए फरमान में, परिस्थिति का वर्णन बिलकुल ही उल्टा है। इसमें उल्लेख है कि अधिकारी गण सिर्फ बड़े क्षेत्र को 'खेती योग्य' भूमि, बिना यह संकेत करते हुए कि वास्तविक रूप से कितनी जोत

में है, उसे सूचित कर देते हैं। इससे यह आशंका ज़ाहिर होती है कि यह वास्तविक जोती गई भूमि के क्षेत्र में गिराबट को छुपाने के लिए किया गया है, अधिकारी गणों को खेती योग्य भूमि को बगैर जुता छोड़ने एवं किसानों के पलायन के कारणों को खोजने धारा 2 की हिदायतें दी गई हैं। उन्हें विशेष तौर पर ग्रामीण व स्थानीय अधिकारियों, मुकद्दम, चौधरी और कानूनगो धारा 6, 9, 10 एवं 11 द्वारा ज़बरदस्ती वसूली और दमनकारी कार्यवाहियाँ रोकने के लिए चेतावनी दी गई है। अधिकारियों को यह भी कहा गया है कि आश्वासन और रियायतें देकर किसानों को वापस लाने का प्रयास करें। संकट का प्रतिबिंब 'जमादामी' या, जो राजकीय मान्यता प्राप्त 'राजस्व आय' की गिरावट में दिखाई देता है। एक अधिकारी की जागीर की संभावित 'जमादामी' उसकी तनख्वाह के बराबर होती थी। जमादामी में घटौती स्वीकारना प्रशासन के लिए अत्यधिक अपवादजनक कदम माना जाता था। क्योंकि जागीदार के बकाया तनख्वाह दावों को पूरा करने के लिए नई जागीर देनी पड़ती थी। इस तरह सामान्यतः जमा में गिरावट नहीं दिखाई देनी चाहिए, जब तक कि वास्तविक राजस्व संग्रह में गिरावट अत्यधिक न हो। इसके अतिरिक्त, अभावों के समय में कीमतें अवश्य बढ़ी होंगी एवं मौद्रिक मामलों में राजस्व–दर भी बढ़ गई होगी जैसाकि समकालीन मिरात–ए–अहमदी के विशिष्ट वकतव्यों से जाहिर होता है। अगर जमादामी में फिर भी गिरावट आई है, तो ऐसा उत्पादन में अत्यधिक गिरावट की वजह से ही संभव हो सकता था, जिसका अनुपात बढ़ती हुई कीमतों से कहीं अधिक हो। यह गिरावट विशेषकर उन सूबों में देखी जा सकती है, जो कि अभावों से गंभीर रूप से प्रभावित रहे जान पड़ते हैं।

CONFLICT OF INTERESTS

None

ACKNOWLEDGMENTS

None

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

कार्ल मार्क्स, कैपिटल, ए क्रिटीक आफ़ पोलिटिकल इकानमी, पृ0 392–93
बी.एच. बेडेन–पावेल, दि इंडियन विपेज कम्युनिटी, लंदन, पृ0 16–17
मैक्स वेबर, एब्रिश डेर यूनिवर्सलेन सोशियल एण्ड विर्टशाफ्ट्स गेशिख्टे, म्यूनिख, लिपजिग, पृ0 37
मैक्स वेबर, उपरोक्त, पृ0 110–11; अंग्रेजी अनुवाद, पृ. 97
मैक्स वेबर, उपरोक्त, पृ0 37, 148; अंग्रेजी अनुवाद, पृ0 128, 271 (टिप्पणी 5)
एम. एन. श्रीनिवास, इंडियाज विलेजेज, पश्चिम बंगाल, पृ0 180–91
टी.ओ. बाइडेलमान, ए कंपेरेटिव एनालिसिस आफ़ दि जजमानी सिस्टम, पृ0 6
ए.एस. आल्टेकर, ए हिस्ट्री आफ़ विपेज कम्युनिटीज़ इन वेस्टर्न इंडिया, पृ. 89–90